बंजारा समाज

सभ्य नागरिक से अपराधी जाति की ओर

जितेंद्र सिंह

एक बंजारे की घास-फूंस से बनी झोंपड़ी

> अपराधी जनजाति अधिनियम प्रावधान को लेकर मैं चिंतित हूँ। यह नागरिक स्वतंत्रता का निषेध करता है। इसकी कार्यप्रणाली पर व्यापक विचार किया जाना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि इसे संविधान से हटाया जाए। किसी भी जनजाति को 'जन्मजात अपराधी' क़रार नहीं दिया जा सकता। यह सिद्धांत न्याय और अपराधियों से निपटने के किसी भी सभ्य सिद्धांत से मेल नहीं खाता।
>
> —जवाहर लाल नेहरू[1]

I

प्रस्तावना

भारतीय संविधान में विमुक्त और घुमंतू जनजातियों का उल्लेख नहीं है। यह दस्तावेज़ ख़ुद को अनुसूचित जाति (अजा), अनुसूचित जनजाति (अज) और अन्य पिछड़े वर्ग (अपिव) तक सीमित रखता है। महाराष्ट्र और गुजरात जैसे कुछ राज्यों को छोड़ कर ज़्यादातर विमुक्त और घुमंतू जनजातियाँ

---

[1] *एक्स क्रिमिनल ट्राइब्स ऑफ़ इंडिया एक्ट में उद्धृत.*

सामाजिक क्षेत्र के प्रबंधन से बाहर हैं। इन समुदायों की बड़ी संख्या अजा, अज और अपिव की सूची में होने के बावजूद, संघ और राज्यों द्वारा शुरू किये गये सकारात्मक कल्याणकारी कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठा पाई है। परिणामस्वरूप, ऐसे समुदाय अशिक्षा और अज्ञानता के कारण भारतीय समाज के सबसे वंचित और कमज़ोर वर्ग बने हुए हैं। इस शोध-आलेख में बंजारा, घुमंतू, अर्ध-घुमंतू, विमुक्त जनजाति जैसे शब्दों का प्रयोग बारम्बार किया गया है। परिभाषाओं की दृष्टि से इन तीनों समुदायों की श्रेणियों में सूक्ष्म अंतर देखने को मिलता है। घुमंतू और अर्ध-घुमंतू, विमुक्त जनजातियों को परिभाषित करने के संबंध में वैचारिक स्पष्टता की अधिक आवश्यकता है। बंजारा— इस शब्द का प्रयोग प्राचीन और मध्यकालीन भारत के लेखन में अधिक हुआ था। जीवन-भर यायावरी के चलते बंजारा समुदाय सफ़र का पर्याय बन चुके थे। बंजारों का न कोई ठौर ठिकाना होता था, न ही घर-द्वार। किसी स्थान-विशेष से भी इनका ख़ास लगाव नहीं होता था। एक स्थान पर ठहरते ही नहीं थे। सादियों से बंजारे देश के दूर-दराज़ इलाक़ों में निडर होकर यात्राएँ और व्यापार करते रहे हैं। घुमंतू— ऑक्सफ़र्ड एडवांस्ड लर्नर्स डिक्शनरी में घुमंतू को एक जनजाति का सदस्य या ऐसे लोगों के रूप में परिभाषित किया है जो अपने जानवरों के साथ एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं और उनका कोई स्थायी घर नहीं होता। यहाँ दिया गया दूसरा अर्थ है : वह व्यक्ति जो एक स्थान पर लम्बे समय तक नहीं रुकता। अर्ध-घुमंतू— वे समुदाय हैं, जिनके पास गाँवों से दूर एक निश्चित निवास स्थान है, जहाँ वे बारिश के मौसम में रहते हैं। वर्ष के शुष्क महीनों के दौरान, वे आजीविका के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर भ्रमण करते रहते हैं। विमुक्त जनजातियाँ— यह अभिव्यक्ति उन सभी समुदायों के लिए है, जिन्हें पूरे भारतीय क्षेत्र में 1871 से 1947 के बीच ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किये गये आपराधिक जनजाति अधिनियमों के कई संस्करणों के तहत अधिसूचित किया और आज़ादी के बाद इन अधिनियमों को दोषनिवृत्ति द्वारा 'निरूपित' किया गया। आयंगर समिति द्वारा ऐसे समुदायों की सूची तैयार की गयी थी। मैंने बुंदेलखण्ड क्षेत्र के जिस कबूतरा समुदाय का अध्ययन इस शोध-आलेख में प्रस्तुत किया है, वह राज्य द्वारा बनाई गयी किसी भी श्रेणी में नामांकित नहीं है।

भारत का बंजारा समुदाय

भारत की प्राचीन भाषाओं के साहित्य में बंजारा शब्द की व्युत्पत्ति व अर्थ का पता चलता है। ऋग्वेद में जिंसों के क्रय-विक्रय से संबंधित व्यक्ति को 'वणिज्य' कहा गया है।[2] डॉ. ग्रियर्सन ने संस्कृत के 'वाणिज्य' शब्द के साथ बंजारा शब्द का संबंध स्थापित किया है : वाणिज्य-वणिज्यकार-बानिज्जारो-बंजारा।[3] इस तरह कहा जा सकता है कि बंजारा शब्द जातिसूचक नहीं, व्यवसाय सूचक है। यह शब्द अपने आप में एक पूरी जीवन शैली और संस्कृति समेटे हुए है यह सम्बोधन सुनते ही एक ऐसे व्यक्ति अथवा समुदाय की तस्वीर मस्तिष्क में उभरती है जो घुमक्कड़ ,अस्थायी डेरा डालने वाले, अलग पोशाक, विरासत, रीति-रिवाज और भाषा उन्हें बहुसंख्यक जनता से अलग पहचान देती है। एक समय भारत के व्यापार में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। वे मूल रूप से अनाज, नमक, बाँस, जलावन, मनके, कौड़ियाँ, शंख और अन्य आवश्यक वस्तुओं को सुदूर बीहड़ और दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक पहुँचाते थे।

बंजारा समुदाय स्वयं को एक घुमंतू समुदाय मानता है। बंजारों को घुमंतू व्यापारियों के समूह के रूप में वर्णित किया जाता था। पृथक् समूहों में, दूसरों से अलग-थलग रहने की उनकी आदतें, उनके घुमंतू दिनों की एक विशेषता थी। यह विशेषता अभी भी मौजूद है।[4] वे आजीविका की तलाश

---

[2] ऋग्वेद 11.12.11 : 5/45/6

[3] डॉ. ग्रियर्सन (1883) : 172.

[4] नाइक और नाइक (2012) : 05.

में जगह-जगह भटकते रहते थे।[5] एक समय ऐसा भी था जब राष्ट्रीय जीवन में इनका बहुत महत्त्व था। वर्तमान में इनकी दयनीय दशा समझने के लिए इनके जीवन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना ज़रूरी है।

प्राचीन काल : बंजारों का अपना ऐतिहासिक लेखा-जोखा है, जो बताता है कि उनका मूल निवास उत्तर पश्चिमी भारत में ही कहीं था। उन्हें आज के पाकिस्तान और बलूचिस्तान क्षेत्र के निवासियों के रूप में देखा जाता था।[6] उनकी उपस्थिति यूनानी सभ्यता से लेकर हड़प्पा और मोहनजोदड़ो तक मिलती है। उनके वैश्विक संगठन को रोमा जिप्सी के नाम से जाना जाता था। रोमा दुनिया के लगभग साठ देशों में पाए जाते थे। इनकी यायावरी के संबंध में भी कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। बलिराम पाटिल ने बंजारा संस्कृति के विश्लेषण में इन्हें राजस्थान से संबंधित जाति माना है। प्राचीन राजस्थान की जातियों में एक बहुत बड़ा पिछड़ा वर्ग था, जिसके कई लोग रोज़ी-रोटी के लिए देश में दूर-दूर तक चले गये। इनमें एक गोर नामक जाति थी जिसके पास चौपाये भी थे। समय के साथ उनके चौपायों की संख्या बढ़ती गयी और जीवन-निर्वाह की व्यापक पृष्ठभूमि बनती चली गयी।[7]

दण्डी के *दशकुमार चरित* के आधार पर एम.एम. इलियट ने बंजारों का समय ईसापूर्व चौथी शताब्दी निर्धारित किया है। उन्होंने लिखा है 'बंजारा और कोई नहीं, वे वही प्राचीन ट्राइब्ज़ हैं जो चौथी सदी ईसापूर्व में छोटे-छोटे टेंटों (डेरों) में रहते थे। वे अन्न ढोने के लिए अपने बैल भाड़े पर देते थे।[8] इस तरह यह जनजाति एक सुनिश्चित इतिहास रखती है। प्राचीन काल में ही भारत की सीमाओं से परे बंजारों का पलायन स्वयं ही उनके नृजातिविज्ञान को सिद्ध करता है।

मध्यकाल : रसेल और हीरालाल का मानना है कि राजस्थान के मूल निवासी 'गोर' या 'चारण' मध्यकालीन भारत में बंजारा नाम से प्रख्यात हुए। पूरे देश में इस जनजाति की प्रसिद्धि कुशल सार्थवाह के रूप में थी।[9] 'अकाल के समय बंजारे नेपाल, चीन, तिब्बत, ईरान, काबुल आदि देशों से अनाज लाते और अकालग्रस्त क्षेत्रों में पहुँचाते थे। इनके साहस और परिश्रम से प्रसन्न हो कर जागीरदारों ने इन्हें पुरस्कार भी प्रदान किये। इससे स्पष्ट पता चलता है कि मध्यकाल में बंजारों का प्रमुख व्यवसाय पशुओं की पीठ पर व्यावसायिक वस्तुएँ लाद कर विभिन्न क्षेत्रों में विक्रय करना था। इसी सिलसिले में प्रख्यात उर्दू कवि नज़ीर अक़बराबादी ने लिखा है :

तू है लक्खी बंजारा। टांडा है तेरा भारी ।
ग़फ़लत दिल में मत रखना। तू बहुत बड़ा व्यापारी।।
व्यापार तेरा सच्चा और ख़ुदा का तू है प्यारा।
लाख अशर्फ़ी लक्खी तोल कौन करेगा व्यापार।।

विभिन्न राजघरानों, जागीरदारों, मुग़लों और अंग्रेज़ों के साथ उनके संबंधों ने उन्हें सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता प्राप्त करने में मदद की। मुग़ल काल के दौरान व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ। बंजारे अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा वस्तुओं की ख़रीद, ढुलाई, क्रय-विक्रय के मूल्य नियंत्रण तंत्र के चलते सक्षम हुए थे। मुस्लिम शासकों ने लोगों तक अनाज की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कुछ नियम बनाए थे।[10] उनके पास मुख्यत: व्यापार के उद्देश्य के लिए 10,000-20,000 बैल थे। कठिन पगडण्डियों वाले क्षेत्रों में खाद्यान्न-पूर्तिकर्ता के रूप में उन्होंने अपनी सेवाएँ प्रदान

[5] ट्रैवेल (2009) : 14.
[6] नागवेनी टी. (2014) : 04.
[7] बलिराम पाटिल (2015) : 04.
[8] हेनरी मायर्स इलियट (1869) : 229.
[9] रॉबर्ट वे रसेल और हीरालाल (1975) : 213.
[10] रॉबर्ट वेन रसेल और हीरालाल (1975) : 11.

आज़ादी के इतने दशकों के बाद भी उन्हें जीवन की बुनियादी सुविधाएँ नहीं मिली हैं। दूसरी तरफ़ प्रगतिशील क़ानूनों, सोशल नेटवर्किंग और उनके विभिन्न हितधारकों के हस्तक्षेप के कारण इक्कीसवीं सदी में घुमंतू जीवन-शैली एक हद तक पूरी बदल-सी गयी है। नयी सहस्राब्दी में सहभागी संचार और विकास के दृष्टिकोणों के माध्यम से उन्हें शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त किया जाना चाहिए। आज घुमंतू समुदाय भारतीय समाज के सबसे अधीनस्थ वर्गों में से एक है जिन्हें ऐतिहासिक अव्यवस्था, अपरम्परागत व्यवसाय, औपनिवेशिक विरासत और सामाजिक कलंक का शिकार बनाया गया है। इन्हें विकास की आधुनिक प्रक्रिया भी अपनी कक्षा में शामिल करने में विफल रही है। घुमंतू समुदाय अपनी औपनिवेशिक कलंकित छवि के कारण नये अवसरों से वंचित हैं।

कीं। युद्ध के दौरान बंजारों ने मुग़ल शासकों तथा सेना के बीच विश्वास और साख हासिल कर ली थी।[11] मुग़लों ने उन्हें कई विशेषाधिकार प्रदान करके पुरस्कृत किया।

मध्यकाल में व्यापार का माध्यम हुण्डी था जिसे बंजारों द्वारा बख़ूबी प्रयोग किया जाता था। अबुल फ़ज़ल ने इसके बारे में लिखा है — इस देश में जब किसी को दूर धन ले जाना होता था तो बिना यात्रा-वाहन पर ख़र्च किये वह अपना धन साहूकार को दे देता था। उसे उस धन के बदले लिखा हुआ काग़ज़ का टुकड़ा देता था जिसे दिखा कर वह गंतव्य स्थान पर जा कर पूरा धन वसूल कर सकता था। इस प्रकार से व्यापार को सुगमता प्रदान करते हुए बंजारे (व्यापारी) व्यापार में अपनी उपस्थिति और विश्वास को सुनिश्चित कर पा रहे थे।[12]

बंजारे न केवल व्यापार में ही अग्रणी थे बल्कि समय-समय पर राजनीति में भी अपना लोहा मनवाने में पीछे नहीं रहे थे। इन लोगों ने समसामयिक राजनीति में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और सतारा के मराठा शासकों, पूना के पेशवाओं, हैदराबाद के निजाम और मैसूर तथा मराठा युद्धों में अंग्रेज़ों के अधीन सेवा भी की थी। बंजारों ने मध्यकाल में स्थानीय व्यापार में सक्रिय रूप से भाग लिया और लोगों को खाद्यान्न, कच्चे माल, वस्त्र, रेशम, खच्चर और अन्य वस्तु उपलब्ध करायीं। वे थोक में माल की ढुलाई करने में विशेषज्ञ थे। वे कभी-कभी बड़े व्यापारियों के लिए हज़ारों बैलों पर अनाज और अन्य आवश्यक वस्तुओं को लाद कर अपने परिवारों के साथ लम्बी दूरी तय करते थे।[13] उनके कारवाँ सेना को अनाज की आपूर्ति कराने के लिए राज्य के संरक्षण में चलते थे। इसी वजह से 'कारवानियन' के रूप में भी जाना जाता था।[14] मध्यकाल के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि जायसी ने अपने काव्य *पद्मावत* में एक स्थान पर वर्णन किया है— 'चित्तौड़गढ़ कर इक बंजारा सिंघलदीप चला बेपारा'। वस्तुतः बंजारे अठारहवीं शताब्दी तक व्यापारिक लेन-देन के दृष्टिकोण से भारत और बाक़ी दुनिया के बीच सेतु का काम करते थे।

औपनिवेशिक काल : उन्नीसवीं सदी में व्यापार तथा परिवहन का स्वरूप बदल गया। रेलवे और सड़क मार्गों की शुरुआत के साथ ही बंजारों की व्यापारिक गतिविधियों में ठहराव-सा आ गया। 1853 में भारत में रेल की पटरी बिछने के बाद बंजारों की परिवहन व्यवस्था निरर्थक हो गयी। पशुओं की पीठ पर माल ढोने का कठिन कार्य अब रेल पर आसानी से किया जाने लगा। रेलवे और अन्य परिवहन सेवाओं ने पूरे देश में संचार सुविधाओं का विस्तार किया। लम्बी दूरी तक थोक में सामान को ढोने वाले समूह के रूप में बंजारों की भूमिका औपनिवेशिक शासन द्वारा लगभग समाप्त कर दी

[11] बी.जी. हालबर (1986) : 02.
[12] हरिश्चंद्र वर्मा (1993) : 462.
[13] सेल्फ़ स्टडी हिस्ट्री (2015) : 12.
[14] गोविंद राठौड़ (2014) : 08.

डेरे में बनी हवन वेदी

गयी। तभी से बंजारों का व्यवसाय अस्तव्यस्त होता चला गया।[15] मुग़ल साम्राज्य का पतन होते-होते भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में भारी फेर-बदल हुआ। इसका असर बंजारों के व्यवसाय पर भी पड़ा। अंग्रेज़ और हिंदुस्तानी शासकों में जो युद्ध छिड़े उनमें इन्हें ज़बर्दस्ती घसीटा गया। बंजारों को राजपूत, मराठा, मुसलमान, अंग्रेज़ और फ्रांसीसी सेनाओं को युद्ध क्षेत्रों में रसद पहुँचाने का कार्य करना पड़ा। युद्ध में लड़ने वाले दोनों विरोधी दल रसद के लिए इन्हें आदेश देते थे। उन्हें परस्पर विपरीत पक्षों की टुकड़ियों को खाद्य-सामग्री पहुँचाई जाती थी।[16] बलिराम पाटिल ने लिखा है : हिंदुस्तानी शासकों ने बंजारों को सामरिक शस्त्र वहन करने, फ़ौजी जवानों को खाद्यान्न सप्लाई करने तथा आपातस्थिति में जवाबी कार्यवाही करने की अनुमति दे रखी थी।[17] अनाज ख़रीदने के लिए इन लोगों को सेना के कमांडरों से पेशगी मिलती थी। पेशगी के रुपयों से अनाज ख़रीद कर छावनी तक पहुँचाया जाता था। सेना नायकों के आदेश का अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था। ख़रीदे गये अनाज का हिसाब ये लोग सेना के मुखिया को देते थे। इनके टांडों पर दोनों दल के लड़ाकुओं की कड़ी निगरानी रहती थी। अपने शत्रु दल की टुकड़ियों को रसद न पहुँचे— इस ताक में दोनों शत्रु दल बैठे रहते थे और मौक़ा पाते ही सेना टांडे पर टूट पड़ती थी। बंजारों से अनाज छीन लिया जाता था। दूसरी ओर पेशगी न चुकाने के आरोप में इनको सूली पर चढ़ा दिया जाता था।[18] फ़िरोज़शाह बहमन के भाई खानान ने इनके कई हज़ार बैलों को ज़ब्त कर लिया था।[19]

औपनिवेशिक शासन के दौरान बंजारों को लूट, डकैती, मवेशी उठाने और बच्चों के अपहरण जैसे अपराधों की ओर ढकेल दिया गया। ब्रिटिश शासक अपनी ग़लत अवधारणाओं के चलते बंजारों के प्रति क्रूर थे। वे लम्बे समय तक अपने व्यापारिक संबंधों को जारी नहीं रख सके, क्योंकि अंग्रेज़ों ने अपने ख़िलाफ़ लड़ रही स्थानीय सेनाओं तक को उनके द्वारा माल की आपूर्ति और उनकी गतिशीलता पर आपत्ति जतायी। ब्रिटिश ने आपराधिक वर्गों के साथ बंजारों को भी आपराधिक जनजातियों के रूप में अधिसूचित कर दिया। 1871 में आपराधिक जनजातीय अधिनियम के लागू होने के साथ हालात और भी अधिक कठोर हो गये।[20] यह बंजारा समुदाय के लिए एक बड़ा सामाजिक और आर्थिक नुक़सान था। 1924 में समग्र आपराधिक जनजाति अधिनियम के लागू होने के बाद उन पर कुछ और प्रतिबंध लगा दिये गये थे। अंग्रेज़ों ने बंजारों पर युद्धग्रस्त इलाक़ों को लूटने का आरोप लगाया। औपनिवेशिक शासन के दौरान, व्यापारियों के रूप में आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर बंजारे लुटेरे पूँजीवाद का शिकार हो गये।[21] अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा मुख्य आजीविका से वंचित किये जाने के कारण बंजारे आर्थिक रूप से कमज़ोर हो गये। आधारभूत ढाँचे और आधुनिक नागरिक सुविधाओं के विकास ने व्यावहारिक रूप से बंजारों की अर्थव्यवस्था को और कमज़ोर किया।[22]

[15] बरार सेंसस रिपोर्ट (1881) : 132.
[16] विलियम इर्विन (1922) : 192.
[17] बलिराम पाटिल (2014) : 10.
[18] यशवंत जाधव (1992) : 4-5.
[19] बलिराम पाटिल (2014) : 204.
[20] बी.जी. हालबर (1986) : 02.
[21] नागवेनी टी. (2014) : 04.
[22] रॉबर्ट गैब्रियल वराडी (1979) : 15.

दरअसल, अनाज-परिवहन में अंग्रेज़ बंजारों के एकाधिकार से नाराज़ थे और उनके साथ कठोर व्यवहार करते थे। अधिनियम ने जीवन का ख़ानाबदोश तरीक़ा ही ख़तरे में डाल दिया।[23] लेकिन, बंजारों ने बीसवीं सदी में एक नयी ताक़त के साथ प्रवेश किया।[24] उन्होंने अपनी आजीविका और आत्मछवि को बचाए रखने की इच्छा के बीच सफलतापूर्वक सामंजस्य बैठाया। धीरे-धीरे उन्होंने स्थानीय संस्कृति को अपना लिया और अपने अस्तित्व और विकास के लिए उन्होंने स्थानीय पर्यावरण के साथ स्वयं को समायोजित कर लिया। थर्सटन और ग्रियर्सन जैसे इतिहासकारों ने प्रलेखित किया है कि बंजारे अपनी आजीविका के लिए वन उत्पाद की बिक्री और चरवाहे के काम पर निर्भर थे। लेकिन अंग्रेज़ों ने वनों और वन्य जीव संरक्षण के जो अधिनियम बनाए उनसे बंजारों को आर्थिक रूप से नुक़सान उठाना पड़ा था। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर उनकी हक़दारी खत्म होती चली गयी। आवास के अभाव में बंजारों को ग्रामीण शहरी क्षेत्रों, पहाड़ी स्टेशनों और अन्य दूरदराज़ के क्षेत्रों की तरफ़ बढ़ना पड़ा।

कलंक : अपराधी जनजाति अधिनियम क्यों?

जंगल हमारे, ज़मीन हमारी, हमारा बहता हुआ दरिया का पानी
फिरते रहे बड्डे हमारे, जंगल जंगल डूगर डूगर।।
भूख लगी, भीख माँगी माँगने से नहीं मिला, चोरी कर ली
अंग्रेज़ आये क़ानून बनाए, जन्म से हमको चोर बनाए
अंग्रेज़ आये त्रस्त किये ऐसे, मार-मार के चमड़ी उधेड़ी।।
जंगल हमारे, ज़मीन हमारी ...
अंग्रेज़ गये पुलिस आयी विमुक्ता को जेल दिखायी।।
जंगल हमारे ज़मीन हमारी, हमारा बहता हुआ दरिया का पानी
जंगल गये, ज़मीन गयी, चला गया दरिया का पानी चला गया दरिया का पानी।।[25]

आपराधिक जनजाति शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ों ने अपने समय के सबसे क्रूर और जंगली लुटेरों का वर्णन करने के लिए किया था। इस शब्द को गढ़ने का एकमात्र उद्देश्य अपराधी घुमंतू जनजातियों (आदिवासी, ख़ानाबदोश और अर्ध-घुमंतू समूहों, मवेशी चरवाहों, भटकने वाले गायक, व्यापारी, कालाबाज़) की पहचान करके उनकी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का था। उनके लिए एक स्थायी निवास स्थान निर्धारित करके उन्हें विशेष बस्तियों में अलग रखा गया। उनके सभी सदस्यों को 14 वर्ष की उम्र से पंजीकरण कराना होता था। चाहे वे किसी अपराध के दोषी हों या नहीं।[i] इस तरह अपराधी जनजाति अधिनियम द्वारा लगभग 45 लाख की संख्या वाले बेघर यायावरों, निजी सेनाओं के जासूसों और सुदृढ़ शरीर वाले अंगरक्षकों को अपराधियों के रूप में बदल दिया गया। इनमें से प्रत्येक ने अपने समूहों की निजी सेनाओं में अपनी व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर उत्कृष्ट प्रदर्शन किया था। इन समुदायों को आपराधिक जनजातियों के रूप में वर्गीकृत करने के कई कारण हैं। विद्वानों के मतानुसार इन समुदायों ने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ स्वतंत्रता संग्राम में सैनिकों को सूचित किया, ब्रिटिश आक्रामकता के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई और लड़ाई लड़ी। इसके अलावा भोजन, धन, गोला-बारूद पहुँचाने का भी काम किया। वे ब्रिटिश पुलिस के लिए सर्पमीन से भी वे अधिक फिसलाऊ साबित हुए।[26] नतीजतन अंग्रेज़ों ने इन्हें अपने स्थानीय प्रशासन के लिए एक बड़ा ख़तरा माना। भविष्य की

[23] विनोद पवार (2007) : 06.
[24] रॉबर्ट गैब्रियल वराडी (1979) : 15.
[25] हेनरी श्वार्ज़ (2010) : 09.
[i] *टाइम्स ऑफ़ इंडिया,* 30 मई, 2011 को देखा और पढ़ा गया.
[26] गणेश.एन. देवी (1992) : 28; राधाकृष्णन (2000) : 45; कन्नन (2007) : 76.

सुरक्षा के लिए उन्होंने कुछ समुदायों को आपराधिक जनजातियों के रूप में सूचीबद्ध कर दिया।[27] इससे न केवल उनकी सामूहिक शक्ति को बाधित किया गया, बल्कि समाज की मुख्यधारा से भी उन्हें अदृश्य करने का प्रयास किया गया। अंग्रेज़ों का उद्देश्य ऐसे समुदायों को पूरी तरह से शक्ति, सम्प्रभुता और स्वतंत्रता, सामाजिक राजनीतिक पूँजी से भी बेदख़ल करना था। वास्तव में आपराधिक रिकॉर्ड रखने वाले कुछ ही समुदाय थे। लेकिन इस अधिनियम के तहत ख़ानाबदोश और व्यापारियों को भी रख दिया गया। इस अधिनियम का यह प्रमुख दोष था।[28]

आपराधिक जनजाति शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ों ने अपने समय के सबसे क्रूर और जंगली लुटेरों का वर्णन करने के लिए किया था। इस शब्द को गढ़ने का एकमात्र उद्देश्य अपराधी घुमंतू जनजातियों (आदिवासी, ख़ानाबदोश और अर्ध-घुमंतू समूहों, मवेशी चरवाहों, भटकने वाले गायक, व्यापारी, कलाबाज़) की पहचान करके उनकी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने का था। उनके लिए एक स्थायी निवास स्थान निर्धारित करके उन्हें विशेष बस्तियों में अलग रखा गया। उनके सभी सदस्यों को 14 वर्ष की उम्र से पंजीकरण कराना होता था। चाहे वे किसी अपराध के दोषी हों या नहीं। इस तरह अपराधी जनजाति अधिनियम द्वारा लगभग 45 लाख की संख्या वाले बेघर यायावरों, निजी सेनाओं के जासूसों और सुदृढ़ शरीर वाले अंगरक्षकों को अपराधियों के रूप में बदल दिया गया।

आज़ादी के बाद बंजारे

स्वतंत्रता के बाद बंजारे भारतीय लोकतंत्र के नागरिक समूह का एक अविभाज्य अंग बन गये। भारत सरकार ने बंजारों की समस्याओं को मानवीय स्पर्श दिया। अपराध में लिप्त लोगों को सुधरने का मौक़ा दिया गया। कई बस्तियों को मुक्ति सेना, विभिन्न मिशनों और लोकोपकारी संगठनों की देखभाल में रखा गया। बंजारों को स्वतंत्रता के बाद 1949 में विमुक्त समुदायों में से एक के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। सरकार ने आपराधिक जनजातीय अधिनियम, 1924 के प्रावधानों की समीक्षा की और 1952 में इसे समाप्त कर दिया। बंजारे 'विमुक्त' कर दिये गये।[29] 1952 में ही भारत सरकार ने 'आदतन अपराधी अधिनियम' (एचओए) के रूप में इस अधिनियम को पुनर्जन्म दिया। यह नया अधिनियम पुराने से बहुत अलग नहीं था, हालाँकि संदर्भ और उद्देश्य नामित अधिनियम से पूरी तरह से अलग थे। संशोधित अधिनियम में उनकी आजीविका के लिए कोई प्रावधान नहीं किया। 1953 में 'अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ' के बैनर के तहत बंजारे राष्ट्रीय स्तर पर संगठित हुए। बंजारा समुदाय को उनकी ऐतिहासिक विरासत और राष्ट्र के विकास के लिए प्रमुख व्यापारियों के रूप में उनके योगदान को याद कराया गया। संगठन ने बंजारा समुदाय से अपने बच्चों को शिक्षित करने, आरक्षण का लाभ प्राप्त लेने और लोकतांत्रिक तरीक़े से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन से गुज़रने की अपील की।

उनकी प्रगति के लिए ज़मीन तैयार करने तथा नीति-निर्माताओं को उनके पिछड़ेपन के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए राष्ट्रीय निकाय द्वारा समयबद्ध तरीक़े से राष्ट्रीय सम्मेलनों की शृंखला आयोजित की गयी। 1977 में उन्हें अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता मिली। 1980 के दशक में समुदाय के विकास के लिए सामाजिक कार्रवाइयों और राजनीतिक समर्थन जुटाने के लिए समुदाय

[27] अजय दाण्डेकर (2010) : 152.
[28] दिलीप डिसूज़ा (2001) : 68.
[29] बी.जी. हालबर (1986) : 02.

की एक नयी ब्रिगेड गठित हुई। अक्तूबर, 1999 में जनजातियों के सबसे अधिक वंचित वर्गों पर एकीकृत सामाजिक-आर्थिक विकास पर ध्यान देने के उद्देश्य से आदिवासी मामलों के मंत्रालय का गठन किया गया।

वी.पी. नाइक ने संवैधानिक मानदण्डों और दिशा-निर्देशों के अनुसार आज़ादी के बाद सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए बंजारों के एक राष्ट्रीय नेटवर्क के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्हें विभिन्न भारतीय राज्यों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्गों के अंतर्गत लाया गया। कुछ राज्य सरकारों ने भी उन्हें अपनी स्थानीय सामाजिक-आर्थिक स्थितियों तथा स्वतंत्रता पूर्व तथा उसके पश्चात् भारत में उनके योगदान को स्वीकारा और उनको राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों द्वारा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में वर्गीकृत किया गया।[30]

लेकिन, इन प्रयासों के बावजूद बंजारों के गाँवों और शहरों के आस-पास बसे पुरवे आज भी दयनीय रूप से उपेक्षित हैं। समुदाय के लोग निर्मम ग़रीबी, निरक्षरता, कुपोषण और ख़राब स्वास्थ्य, बेरोज़गारी और शराब की लत से जूझ रहे हैं।[31] केंद्र और राज्य सरकारों के अधिनियमों, संवैधानिक प्रावधानों के कार्यान्वयन से कुछ हद तक इन समुदायों को अपने लोकतांत्रिक उन्नयन, संक्रमण तथा परिवर्तन के लिए अवसर ज़रूर प्राप्त हुए हैं। लेकिन ये पर्याप्त नहीं हैं। ज़मीनी हक़ीक़त कुछ और ही बयाँ करती है। वे आज भी अलगाव, अपमान और सामाजिक उपेक्षा का सामना कर रहे हैं।

II

उत्तर प्रदेश में विमुक्त समुदायों की स्थिति

डॉ. मजूमदार लिखते हैं— भारत में अपराधी जनजातियों का तात्पर्य उन जनसमूहों से है जो जाति या सामाजिक संबंधों के आधार पर एक-दूसरे से बँधे होते हैं। जो समाज विरोधी कार्य चोरी, ठगी, डकैती, हत्या और दूसरों को शारीरिक चोट पहुँचाने का काम करते हैं। दरअसल, इस तरह की व्याख्या किसी भी समूह / समुदाय के प्रति घोर असंवेदशीलता को प्रदर्शित करती है। विमुक्त जनजातियों का अवलोकन करने के बाद यह अनुमान लगाया गया की देश में 801 विमुक्त, घुमंतू और अर्ध-घुमंतू जनजातियाँ हैं। जो देश की कुल आबादी की 13.5 करोड़ है।[32] इनमें से 22 जनजातियाँ अनुसूचित जातियों की सूची में, अनुसूचित जनजाति में 27, और 421 जनजातियाँ (2.2 करोड़) अन्य पिछड़े वर्गों के रूप में शामिल हैं। अभी भी बहुत से समुदायों (227 जनजातियाँ लगभग 56 लाख लोग) का राज्य द्वारा बनी वर्गों की इस सूची में कोई स्थान नहीं हैं। इस वजह से ये राज्य के कल्याणकारी कार्यक्रमों की पहुँच से बाहर रहते हैं।[33] बालकृष्ण रेणके आयोग की रिपोर्ट के अनुसार उत्तर प्रदेश में सबसे ज़्यादा घुमंतू समुदाय हैं। 38 समुदाय घुमंतू के रूप में, 57 समुदाय विमुक्त समुदाय के रूप में दर्ज किये गये हैं। आयोग के अनुसार देश भर में 98 फ़ीसदी घुमंतू बिना ज़मीन के रहते हैं। 57 फ़ीसदी झोपड़ियों में 72 फ़ीसदी लोगों के पास अपने पहचान पत्र नहीं हैं।

हाल ही में उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर के पास सामूहिक बलात्कार के मामले पर मिसाल के तौर पर ग़ौर किया जा सकता है। मीडिया ने भी इस केस की कम ही जाँच-पड़ताल की। इसलिए कि संदिग्ध अपराधी के रूप में बावरिया (विमुक्त जनजाति) के लोग दर्ज किये गये थे। राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने बावरिया जनजाति के ऐतिहासिक अपराधों की कार्यप्रणाली का विवरण देते हुए सनसनीख़ेज़

[30] आर.एच. हनुमानैकार वग़ैरह (2011) : 33-36.
[31] नागवेनी टी., वही : 04.
[32] दिलीप डिसूज़ा (2001) : 77; भूक्या (2002) : 35; भाषा ट्रस्ट (2006) : 120.
[33] वही : 35.

कबूतरी स्त्रियाँ अपने दैनंदिन वार्तालाप के दौरान

रपट में उन लोगों को अपराध का ज़िम्मेदार ठहरा दिया। 'रात के समय वे कारों का रास्ता रोकते हैं, घरों में चोरी करते हैं, युवा महिलाओं के साथ बलात्कार करते हैं'— पुलिस के संयुक्त आयुक्त के इस वक्तव्य ने आग में घी डालने का काम किया। पूर्व पुलिस अधिकारी किरण बेदी ने दो अगस्त, 2016 को सार्वजनिक रूप से विमुक्त जनजातियों के सम्पूर्ण आबादी पर आरोप लगाते हुए ट्वीट किया— 'पूर्व आपराधिक जनजातियों को बहुत क्रूर होने के लिए जाना जाता है। वे अपराध करने में कट्टर पेशेवर हैं। वे शायद ही कभी पकड़े जाते हैं या उन्हें सज़ा मिल पाती है।' इस ट्वीट की सामाजिक कार्यकर्ताओं ने व्यापक रूप से निंदा की। बेदी ने बाद में अफ़सोस व्यक्त करते हुए माफ़ी माँगी और कहा कि 'मैं हमेशा से ही पूर्व-आपराधिक जनजातियों की शुभचिंतक रही हूँ।'[ii] वस्तुस्थिति यह है कि समाज आज भी विमुक्त घुमंतू जनजातियों को उनकी कलंकित पहचान के साथ जोड़ कर देखता है।

शोध-प्रविधि और अध्ययन-क्षेत्र

यह अध्ययन (2016-18) उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र के (हमीरपुर, जालौन, महोबा) ज़िलों के उन गाँवों, क़स्बों पर केंद्रित है जहाँ पर 'अदृश्य' घुमंतू समुदाय छोटे-छोटे समूहों में बिख़रे हुए हैं। सर्वप्रथम पायलट सर्वेक्षण से समुदायों की निवास स्थान (ज़िलों) की पहचान की गयी। स्नोबॉल सेम्पलिंग के माध्यम से हमीरपुर ज़िले के जलालपुर, मुस्करा, छिबोली और राठ को, महोबा ज़िले के चरखारी, कुलपहाड़ और अजनर, बिल्खी, चुरारी को एवं जालौन ज़िले के उरई, धमनी, कुसमिलिया, डकोर को चुना गया। समुदायों को चुनने का मुख्य कारण यह था कि 2011 की जनगणना के अनुसार बुंदेलखण्ड क्षेत्र के सात ज़िलों में दृश्य दलितों का प्रतिशत 20.8 से 28.0 प्रतिशत के बीच है। इनमें से संख्यात्मक रूप से बड़ी और दृश्य जातियाँ चमार, कोरी, धोबी और बसोर हैं। कंजर, नट, बहेलिया, बेड़िया, कपाड़िया बहेलिया अन्य सबसे मामूली समुदायों में से एक हैं। वे इस क्षेत्र में अदृश्य हैं। इनका प्रतिनिधित्व राजनीतिक क्षेत्र, सरकार और शैक्षिक संस्थानों में बहुत कम है। इसी वजह से इस अध्ययन के लिए इन समुदायों का चुनाव किया गया।

तालिका-1
अदृश्य घुमंतू समुदाय

ज़िले का नाम	समुदाय और उनकी कुल संख्या
हमीरपुर	बहेलिया-10, कंजर-495, नट-299
महोबा	बहेलिया-97, कंजर, 45, नट-183
जालौन	बहेलिया-24, कंजर-1382, नट-2178

http://www.censusindia.gov.in//2011census/population enumeration.html पर उपलब्ध, 3 मार्च, 2014 को देखा गया.

[ii] http://www.hindustantimes.com/india-news/3-arrested-in-bulandshahr-gangrapecase 12 जुलाई, 2017 को देखा गया

आम लोगों का मानना है कि कबूतरा समुदाय के छूने भर से पीपल, बरगद, और तुलसी के पेड़ सूख जाते हैं। ये मंदिरों में पूजा नहीं कर सकते। इसी वजह से इन्होंने अपने डेरों में अपने मंदिर बनवा लिए हैं, जो सुंदर और स्वच्छ हैं। ... लोगों का इन्हें देखने का नज़रिया और व्यवहार असंवेदनशील रहता है। समाज के लोग आम बोल-चाल की भाषा में समुदाय को व्यंग्यात्मक और अपमानजनक भाषा जैसे 'लहँगा ब्रांड' (महिलाओं की पोशाक लहँगा-चोली के पहनने के कारण), 'कंजड़ व्हिस्की' (स्थानीय स्तर पर कंजड़ भी कहा जाता है) या पड्कुला (शराब को पन्नी में पैक करके बेचने की वजह से) जैसे विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है।

अध्ययन की संरचना अन्वेषणात्मक है। विभिन्न समुदायों के सदस्यों की ज़मीनी हक़ीक़त समझने के लिए 'क्रिटिकल एथ्नोग्राफ़ी पद्धति'[34] का प्रयोग किया गया। आँकड़ा-संग्रहण के लिए गुणात्मक पद्धति के अंतर्गत प्राथमिक स्रोतों में ग्रुप चर्चाएँ, असंरचित साक्षात्कार, समुदाय के प्रतिदिन के जीवन, समुदाय की विभिन्न परिस्थितियों (सामाजिक-आर्थिक) से तथ्यों को एकत्र किया गया है। व्यक्तियों के रोज़मर्रा के अनुभवों को, समुदाय की संस्कृति और जीवन जीने के तरीक़ों को साक्षात्कार और प्रतिभागी अवलोकन के माध्यम से प्रलेखित किया गया है। बात से बात शोध-प्रविधि[35] के माध्यम से लोगों के आत्मकथ्यों और दैनिक बैठकों को फ़ील्ड नोट्स के द्वारा विश्लेषित किया है। अलग-अलग साक्षात्कार (महिला, पुरुष, बच्चों) के लिए संयोजन समूहों को 'त्रिकोण पद्धति' के माध्यम से शामिल किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के माध्यम (विभिन्न जनगणना रपटों, इलाक़ाई अख़बारों, पुलिस रिकॉर्ड्स, अभिलेखागारों से मिले तथ्यों, समुदाय से संबंधित साहित्य) से तथ्यों को विश्लेषित और सत्यापित किया गया है। उत्तरदाताओं के नमूने के लिए पुरुषों और महिलाओं में से अलग-अलग आयु वर्ग के लोगों का चयन किया है। बुंदेलखण्ड क्षेत्र का निवासी होने के नाते मैंने अपनी स्थिति और वस्तुनिष्ठता को ध्यान रखते हुए इस अध्ययन को निष्पक्ष भाव से आगे बढ़ाया है। स्थानीय भाषा और क्षेत्र की जानकारी मेरे लिए अतिरिक्त रूप से सुविधाजनक सिद्ध हुई है।

III

बुंदेलखण्ड : एक उपेक्षित स्पेस और अति-उपेक्षित घुमंतू समुदाय

दलित जातियों के विभिन्न परिप्रेक्ष्य में उत्तर प्रदेश में कई अध्ययन हुए हैं। बर्नार्ड कॉन द्वारा आज़मगढ़ के चमारों पर (पूर्वी उत्तर प्रदेश), ओवेन लिंच द्वारा आगरा के जाटवों पर, सुधा पै द्वारा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलितों पर काम किया जा चुका है। नंदिनी गोप्तु ने दलितों के सामाजिक आंदोलनों और राजनीतीकरण पर लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, इलाहाबाद पर अध्ययन किया है। ये सारे अध्ययन दलितों की दृश्यमान और प्रभुत्वशाली जातियों पर केंद्रित हैं। बद्री नारायण ने अपनी पुस्तक *फ्रैक्च्र्ड टेल्स* में अदृश्य दलित समुदायों के बारे में चर्चा की है। बुंदेलखण्ड में अभी तक जो भी अध्ययन हुए हैं, वे सभी विकास, संस्कृति, कृषि, सूखा, अर्थव्यवस्था और ऐतिहासिक दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर किये गये हैं। उपेक्षित समुदायों से संबंधित किसी भी तरह का अध्ययन सामने नहीं आया है। एक उपेक्षित स्पेस के रूप में बुंदेलखण्ड और उसके साथ-साथ जातिगत अध्ययन से अकादमिक जगत अछूता बना रहा है। एक उपेक्षित स्पेस के रूप में बुंदेलखण्ड की कई गम्भीर समस्याएँ हैं— जैसे ख़नन, सूखा, पलायन, ग़रीबी, किसानों की आत्महत्याओं का बढ़ता ग्राफ़ आदि। बुंदेलखण्ड की

[34] डी. सोयिनी मैडिसन (2005) : 27.
[35] बद्री नारायण (2011) : 31.

समस्याओं को कई ग़ैर-सरकारी संस्थानों ने अपने-अपने तरीक़े से व्याख्यायित करके लाभ कमाया है। लेकिन धरातल पर किसी भी समस्या का निस्तारण पूरी तरह से नहीं हो पाया है। ऐसे उपेक्षित स्पेस में चहुँमुखी समस्याओं से घिरे हुए घुमंतू समुदायों की स्थिति और भी ज़्यादा दयनीय हो जाती है। आलेख के अगले खण्ड में बुंदेलखण्ड के घुमंतू कबूतरा समुदाय की चर्चा है।

औपनिवेशिक कल्पना में कबूतरा समुदाय

सामान्यत: कबूतरा नट समुदाय की लड़कियों और महिलाओं को कबूतरी (चालाक और सुंदर) कहा जाता है। समुदाय के पुरुष कबूतरा के नाम से जाने जाते हैं। इनका सामुदायिक नाम कबूतर शब्द से इसलिए लिया गया है कि उनके कलाबाज़ी के करतब, छेड़ख़ानी के तरीक़े कबूतर की उड़ान की तरह हैं, जिससे वे अपने पुरुष ग्राहकों को आकर्षित करती हैं। वे राजस्थान के अलवर और बीकानेर ज़िलों से संबंधित रहे हैं। नृत्य और कलाबाज़ी इनका पारम्परिक व्यवसाय था। कभी-कभी नटनी 'कबूतरी और रण्डी' दोनों रूपों में जानी जाती थी।[36] आजकल महिलाओं के लिए कबूतरी शब्द एक गाली के रूप में प्रयोग होता है।

सामुदायिक इतिहास : यह समुदाय अपने अतीत को एक मिथ के रूप में सँजोये हुए है। किसी भी समुदाय के लिए उसके अतीत की स्मृति / मिथ कभी-कभी वास्तविकता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण साबित होती है। यह समुदाय अपने आपको चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के अतीत के साथ संबंधित करता है। समुदाय के एक बुज़ुर्ग व्यक्ति से इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही तो उसने कहा कि हम रानी पद्मिनी की फ़ौज से हैं। मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् हम जंगलों की ओर भागे हुए फ़ौजी हैं। हम भागते-भागते बुंदेलखण्ड की वीरभूमि पर आ गये और रानी लक्ष्मीबाई की फ़ौज में शामिल हो गये। हमने उनके साथ स्वतंत्रता संग्राम में गुरिल्ला युद्ध में हिस्सा लिया था। हमारे सैकड़ों लोग शहीद हुए है।[iii] बुंदेलखण्ड में कबूतरा समुदाय अपने सामुदायिक इतिहास में लक्ष्मीबाई और झलकारी बाई को एक वीर चरित्र के रूप में भी संरक्षित किये हुए है। उनके अनुसार— जब दर्शक नृत्य देखने में डूब जाते थे, तो कबूतरा पुरुष दर्शकों के सामान की तलाशी लेते और पैसों को ग़ायब कर देते थे। नाच गाकर लोगों का मनोरंजन करना ही इनका परम्परागत व्यवसाय था। यह अब लगभग पूरी तरह ख़त्म-सा हो गया है। आजकल यह समुदाय अपनी आजीविका के लिए शराब बनाने और बेचने के कार्य में संलग्न है।

अस्मिता प्रतिवाद : उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में कबूतरा समुदाय को कंजर की उपजाति माना जाता है। कंजर अनुसूचित जाति में आते हैं। इदाते आयोग की रिपोर्ट-2017 के अंत में एक अतिरिक्त सूची जोड़ी गयी है। इसमें कबूतरा समुदाय को कंजर-उपजाति के रूप में अनुसूचित जाति के तहत विमुक्त समुदाय के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा। लेकिन कब? इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। समुदाय अपनी पहचान कंजर और नट से पृथक् एक जनजाति की चाहता है और इसका दावा भी पेश करता है। स्थानीय स्तर पर यह समुदाय लगातार अपनी सही पहचान पाने के लिए संघर्षरत बना रहता है।

समकालीन चुनौतियाँ : कबूतरा समुदाय अपनी पहचान और अस्तित्व बनाए रखने के लिए कठिन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। नाचने-गाने का व्यवसाय ख़त्म होने के बाद महुआ की

---

[36] रॉबर्ट वेन रसेल एवं हीरालाल (1975).

[iii] साक्षात्कार सज्जन बाबा (65) से 22 मार्च, 2018 को स्थान— कुलपहाड़, जिला महोबा.

कच्ची शराब बनाने और बेचने का काम करते हैं। पुलिस के दृष्टिकोण से यह व्यवसाय अवैधानिक है। लोकतंत्र में चुनाव आम जनता के लिए उम्मीद लेकर आते हैं कि जिन परिस्थितियों से वह जूझ रही, उनका समाधान होगा। जिस तरह के लोकतंत्र का प्रसार हो रहा है, उसके कारण इस समुदाय को राजनेताओं से कोई उम्मीद नहीं नज़र आ रही है कि उनकी परिस्थितियों में कुछ सुधार होगा।

कबूतरा समुदाय की दुविधाओं पर चुनावी राजनीति का कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है। जो प्रभाव है, वह नकारात्मक ही है। ऐसा लगता है कि शिक्षा, रोज़गार के क्षेत्र और राजनीतिक आवाज़ों ने इस समुदाय को छोड़ दिया है। चुनाव आते हैं, चले जाते हैं। लेकिन बुंदेलखण्ड के कबूतरा समुदाय के दु:खों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। समुदाय चुनावों के दौरान शराब बनाने के व्यवसाय में ज़्यादा सक्रिय हो जाता है। उन्हें उम्मीद रहती है कि इस दौरान शराब की बिक्री बढ़ेगी। लेकिन पुलिस और आबकारी विभाग के कर्मचारियों के लिए यह समय समुदाय के लोगों को मारने-पीटने और सलाखों के पीछे धकेलने का होता है। ऐसी कठिन चुनौतियों के बावजूद भरण-पोषण के लिए इस व्यवसाय के अलावा उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। ऐसा नहीं है कि ये लोग कोई दूसरा व्यवसाय नहीं करना चाहते। लेकिन इनकी जन्मजात आपराधिक पहचान समाज के लोगों को इन पर विश्वास करने से रोकती है। कोई भी व्यक्ति इन पर भरोसा नहीं करता। हिंदू ऊँची जातियों और दलित ऊँची जातियों ने इनके कलंकित पहचान की वजह से बहुत पहले से दूरियाँ बना रखी हैं। समुदाय के ख़िलाफ़ दिन-प्रतिदिन पुलिस कार्रवाई होती रहती है। उनमें से एक घटना का ज़िक्र करना चाहूँगा : 10 फ़रवरी, 2017 को विधानसभा चुनाव के कुछ दिन पहले महोबा ज़िले के अजनर थाना के अंतर्गत ग्राम खोई में कबूतरा डेरे में पुलिस और आबकारी निरीक्षक ने अपनी टीम के साथ छापेमारी कर 75 लीटर अवैध शराब, 500 किलोग्राम लहसुन नष्ट कर दिया। चुनाव में अपराध और नशे के कारोबार पर लगाम लगाने के लिए पुलिस और आबकारी टीम इस काम को अंजाम दे रही थी।[iv] शराब बनाने के कार्य में केवल पुरुष ही नहीं महिलाएँ भी बख़ूबी संलग्न रहती हैं। टीम ने घरों के अंदर बन रही शराब और शराब बनाने के उपकरण भी बरामद किये। शराब का काम कर रही दो कबूतरी महिलाओं को भी मौक़े से पकड़ा। आबकारी अधिनियम के तहत कार्यवाही की गयी। इनकी आबादी बुंदेलखण्ड के लगभग प्रत्येक ज़िले में हैं, और इसी व्यवसाय में लगे हुए हैं।

अस्थायी / स्थायी जीवन की समस्याएँ

कुछ घुमंतू समुदाय अभी भी ऐसे हैं जिनके पास रहने के लिए स्थायी निवास नहीं है। कुछ घुमंतू लोगों ने बसना शुरू कर दिया है। कुछ अभी बस रहे हैं, और कुछ बस चुके हैं। लेकिन समस्याएँ इन तीनों तरह के घुमंतुओं के साथ है। वे अपनी जीवन-शैली से इस आधुनिकता के भूगोल और राजनीति का प्रति-आख्यान बन जाते हैं और राज्य की संरचनाओं में रम नहीं पाते। स्थानीय अफ़सरों द्वारा उनकी बसावटों का हटाया जाना समुदायों की प्रमुख समस्याओं में से एक है। उन्हें सरकारी एजेंसियों और अन्य समुदायों द्वारा ग़ैर-क़ानूनी या अनधिकृत अतिक्रमण में रहने वालों के रूप में जाना जाता है। परिवारों के लगातार विस्थापित होने से आजीविका के नुक़सान का डर हमेशा बना रहता है।

पढ़ा-लिखा समूह घुमंतू समुदायों की जिस छवि को उनकी वास्तविक छवि मान बैठा है, वह एक औपनिवेशिक छवि है। शासक वर्ग की अपनी विश्व-दृष्टि कई परिधीय समुदायों के साथ-साथ कबूतरा समुदाय के लिए काफ़ी हानिकारक सिद्ध हुई है। समुदाय से संबंधित लगभग सभी परिवार बहुत ग़रीब हैं। सिर्फ़ किसी तरह से जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। उनकी दैनिक कमाई बहुत कम है और पूरे परिवार को पालने के लिए पर्याप्त नहीं है। आवास इन समुदायों की प्रमुख समस्याओं में से एक

[iv] *न्यूज़ रिपोर्ट : इमामी खान द्वारा,* बुंदेलखण्ड न्यूज़ चैनल में 10 फ़रवरी, 2017 को देखा गया.

एक छापे के दौरान शराब बनाने की सामग्री नष्ट करती हुई पुलिस

है। आधारभूत सुविधाएँ बिजली, पानी, सड़क से इनका निवास-स्थान पूरी तरह से वंचित है। उन्हें कच्ची और तंग झोपड़ियों में रहना पड़ता है। झोपड़ियाँ जिस ज़मीन पर बनी हैं, वह इनकी नहीं है। आस-पास के मिट्टी के टीलों को समतल करके बबूल के पेड़ों को काट कर रहने लायक़ जगह बना ली है। ग्रामीण स्तर की सुविधाएँ भी इनके पास नहीं है। समुदाय के कुछ लोगों ने क्षेत्रीय प्रधान से किसी तरह से आधारकार्ड ज़रूर बनवा दिये हैं जिन्हें देखने से प्रतीत हो रहा था कि वे फ़र्ज़ी हैं। और किसी भी तरह के दस्तावेज़ उनके पास नहीं है। राज्य सरकार ने घुमंतू समुदायों को जो सुविधा दे रखी है, उससे ये लोग पूरी तरह से वंचित हैं। इस समुदाय के स्थायी जीवन से संबंधित एक समस्या यह भी है कि पुलिस और प्रभुत्वशाली लोग इनके डेरों की लगातार निगरानी करते रहते हैं। अगर आस-पास कहीं कोई वारदात होती है तो पहला शक इन्हीं लोगों पर किया जाता है। इनका स्थायी रूप से बसना इनकी समस्यायों में किसी तरह की कमी नहीं लाया है। समस्याएँ और बढ़ी हैं, और अब अपने चरम रूप में हैं।

बहिष्करण और पूर्वाग्रह

कबूतरा समुदाय अपनी आपराधिक पहचान के कारण लोक संसाधनों का उपयोग करने और पवित्र वस्तुओं को छूने से बहिष्कृत रहते हैं। आम लोगों का मानना है कि कबूतरा समुदाय के छूने भर से पीपल, बरगद, और तुलसी के पेड़ सूख जाते हैं। ये मंदिरों में पूजा नहीं कर सकते। इसी वजह से इन्होंने अपने डेरों में अपने मंदिर बनवा लिए हैं, जो सुंदर और स्वच्छ हैं। समुदाय का पुजारी नियमित रूप से पूजा-पाठ करता है। मंदिरों के आस पास हवनकुण्ड भी बने हुए हैं। यह देख कर प्रतीत होता है कि समुदाय के लोग काफ़ी धार्मिक हैं। पानी की दैनिक ज़रूरतों के लिए अपने डेरे के हैण्डपम्प का ही उपयोग करते हैं। पुलिस द्वारा इन लोगों को अनसुलझे विवादों में भी फँसा दिया जाता है। डेरों से बाहर जाने का रास्ता किसी न किसी उच्च जाति के खेत से होकर गुज़रता है। आते-जाते वक़्त उन्हें काफ़ी अभद्र व्यवहार का सामना करना पड़ता है। लोगों का इन्हें देखने का नज़रिया और व्यवहार असंवेदनशील रहता है। समाज के लोग आम बोल-चाल की भाषा में समुदाय को व्यंग्यात्मक और अपमानजनक भाषा जैसे 'लहँगा ब्राण्ड' (महिलाओं की पोशाक लहँगा-चोली के पहनने के कारण), 'कंजड़ व्हिस्की' (स्थानीय स्तर पर कंजड़ भी कहा जाता है) या पड्कुला (शराब को पन्नी में पैक

अधिकतर पुरुष शराब पीकर धुत रहते हैं। इसकी वजह से परिवार की पूरी ज़िम्मेदारी महिला पर आ जाती है। पुलिस द्वारा पकड़े जाने और शारीरिक उत्पीड़न से बचने के लिए पुरुष महिलाओं का उपयोग सहायक के रूप में करते हैं। कबूतरी महिलाएँ अपने पुरुष को बचाने के लिए ख़ुद को पुलिस से पकड़वाती हैं। पुलिस इन्हें पकड़ने के बाद गाली-गलौज करती है। अगर कबूतरी महिला गर्भ से है तो उसे ताने सुनने पड़ते हैं। कोई व्यक्ति हमदर्दी से बात नहीं करता। परिवार के भरण-पोषण के लिए गर्भवती महिला को बाहर भी निकलना पड़ता है, पब्लिक ट्रांसपोर्ट में सफ़र भी करना पड़ता है, और ये सुनना भी पड़ता है— 'कबूतरी है कबूतरी, गाड़ी में बच्चा पैदा कर देगी। बच्चा साला रोयगा नहीं, जेबें झाड़ेगा। ये सब ढोंग है, घाघरा खुलवाओ। पेट पर कपड़ा बाँध रखा होगा। ये बड़ी प्रपंचिन औरतें होती हैं।'

करके बेचने की वजह से) जैसे विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है।

कबूतरी महिलाएँ और उनका संसार

जाँच-पड़ताल से यह पता चला कि ज़्यादातर कबूतरी महिलाएँ अपने परिवार की मुखिया हैं। समुदाय की पेचीदगी भरी दुनिया में महिलाएँ शराब बनाने / बेचने में मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हुए परिवार के पालन-पोषण और आय में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। ये महिलाएँ बहुत मेहनती हैं। पैसा कमाने के साथ-साथ घरेलू गतिविधियों की भी देखभाल करती हैं। भरण-पोषण के लिए उन पर अदृश्य मनोवैज्ञानिक दबाव बना रहता है क्योंकि अधिकतर पुरुष शराब पीकर धुत रहते हैं। इसकी वजह से परिवार की पूरी ज़िम्मेदारी महिला पर आ जाती है। पुलिस द्वारा पकड़े जाने और शारीरिक उत्पीड़न से बचने के लिए पुरुष महिलाओं का उपयोग सहायक के रूप में करते हैं। कबूतरी महिलाएँ अपने पुरुष को बचाने के लिए ख़ुद को पुलिस से पकड़वाती हैं। पुलिस इन्हें पकड़ने के बाद गाली-गलौज करती है।

एक महिला ने बताया कि पुलिस अकसर हम लोगों को झूठी वारदातों में फँसाती है। उसने कहा कि 'पुलिस के दाँत काटने के लिए नहीं हमें फँसाने के लिए हैं। जो रक्षक है वही भक्षक बने हुए है।[v] इन्हें सबसे ज़्यादा डर पुलिस से ही है। फिर भी इस सब के वाबजूद पुलिस अपना काम करती है, और समुदाय अपना। कबूतरी महिलाएँ किसी भी तरह की परिस्थिति को सँभाल लेने में सक्षम हैं। कई तरह से समाज से बहिष्कृत ये महिलाएँ सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग नहीं कर सकतीं। ईंधन के लिए खुले तौर पर कण्डे-लकड़ियाँ नहीं जुटा सकतीं। पानी के सार्वजनिक स्रोतों का उपयोग नहीं कर सकतीं। पब्लिक ट्रांसपोर्ट में भी नहीं जा सकतीं। अगर चली भी जाती हैं, तो लोग इनसे दूरियाँ बनाकर रखते हैं। अगर कबूतरी महिला गर्भ से है तो उसे ताने सुनने पड़ते हैं। कोई व्यक्ति हमदर्दी से बात नहीं करता। परिवार के भरण-पोषण के लिए गर्भवती महिला को बाहर भी निकलना पड़ता है, पब्लिक ट्रांसपोर्ट में सफ़र भी करना पड़ता है, और ये सुनना भी पड़ता है— 'कबूतरी है कबूतरी, गाड़ी में बच्चा पैदा कर देगी। बच्चा साला रोयगा नहीं, जेबें झाड़ेगा। ये सब ढोंग है, घाघरा खुलवाओ। पेट पर कपड़ा बाँध रखा होगा। ये बड़ी प्रपंचिन औरतें होती हैं।' इसके बावजूद भी कबूतरी महिलाएँ बस की सीढ़ियों पर लटक कर या सबसे पिछली सीट पर बैठ कर अपने गंतव्य तक किसी तरह पहुँच ही जाती हैं।

शराब-बिक्री जैसे कार्य में संलग्न होने की विवशता के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि इंदिरा गाँधी के समय में हमसे कहा गया था कि हम चोरी / लूट जैसे काम न करके दारू बनाने का काम कर सकते हैं। हमें ये अधिकार दिया गया था। हम इस व्यवसाय को छोड़ सकते हैं, अगर सरकार हमें सारी सुविधाएँ दे ताकि हम अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकें। अगर सरकार इतना नहीं कर

[v] साक्षात्कार : संध्या (32), ग्राम चुरारी, ज़िला महोबा, मार्च, 2018.

सकती, तो हम जिस व्यवसाय (शराब बनाने) में कुशल हैं, उसका लाइसेंस प्रदान कर दे और एक अच्छी पहचान दे। समुदाय की ऐसी माँगें लम्बे समय से चली आ रही हैं। लेकिन अभी तक किसी ने भी संज्ञान लेना ज़रूरी नहीं समझा। सरकार इन माँगों की पूर्ति करने में पूरी तरह से असमर्थ नज़र आती है। चुनाव के समय क्षेत्रीय नेता ऐसे आश्वासन तो देते हैं। लेकिन चुनाव निकल जाने के बाद इनकी कोई सुनवाई नहीं होती है।

शिक्षा की आकांक्षा

बुंदेलखण्ड के कबूतरा समुदाय की आर्थिक स्थिति अन्य घुमंतू समुदायों की अपेक्षा ठीक है। अगर इनके बच्चों को कोई पढ़ा सके तो वे उनकी पढ़ाई में होने वाले व्यय को वहन कर सकते हैं। समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा के लिए काफ़ी जागरूक है। समुदाय की महिलाएँ कहती हैं कि हम नहीं पढ़ पाए लेकिन हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे पढ़ें और हमें कलंकित भाग्य से छुटकारा दिला सकें। हम अपने बच्चों को सिखाते हैं कि 'भूल जाना कि तोई मतारी (माँ) कबूतरी है। शराब ढालने का काम करती है। भूल जाना कि तेरा बाप पुलिस के हाथों ... गाँव वालों के हाथों से पिटता है। बस पढ़ाई में मन लगा।'[vi] शिक्षा का अभाव, कलंकित पहचान इनके विकास में मुख्य बाधा है। अपने जिस शराब के व्यवसाय से इनकी बदनामी है, उसी की वजह से इनकी आर्थिक स्थिति कुछ ठीक है। उन्हें उम्मीद है कि अगर हमारी नयी पीढ़ी शिक्षित हो गयी तो हमें शराब निर्माता, अपराधी जाति के कलंक से छुटकारा दिला सकती है। लेकिन स्कूल में इनके बच्चे काफ़ी उपेक्षित और अलग तरह की चुनौतियों का सामना करते हैं। शैक्षणिक संस्थाओं में इनके बच्चों को अध्यापक अन्य बच्चों से अलग रखते हैं। इसका कारण जानने के लिए मैंने एक स्कूल के अध्यापक से बात की तो उन्होंने कहा, 'अगर हम इनके बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ रखेंगे तो वे बिगड़ जाएँगे। इनके बच्चे बहुत ही असभ्य हैं। इनके सुधार के लिए स्कूली शिक्षा काफ़ी नहीं है। इनके घर का माहौल पढ़ाई वाला नहीं है। न कोई इनको घर में पढ़ाने वाला है।' मैंने फिर सवाल किया कि आप जाकर इनके बच्चों को घर पर ट्यूशन दे सकते हैं। वे आपको अतिरिक्त पैसा देने को राज़ी हैं। अध्यापक का जवाब था, 'हम इनके डेरों में जाकर बदनाम नहीं होना चाहते।'[vii] इन समस्यायों के बावजूद समुदाय अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रयास करता रहता है।

व्यवसाय पर संकट

घुमंतू समुदायों के लोग अपने पारम्परिक व्यवसायों के माध्यम से अपनी आजीविका अर्जित करना चाहते हैं। संसाधनों और कौशल की कमी के कारण उनके लिए आय के वैकल्पिक स्रोत सीमित हैं। लेकिन कबूतरी महिलाएँ नये कौशल सीखने और परिवार के लिए अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए काम करने को तैयार हैं। लेकिन पूँजी और विपणन कौशल की कमी एक बड़ी बाधा है। इसके अलावा महिलाएँ पशुपालन में भी रुचि लेती हैं। अगर कम ब्याज पर ऋण दिया जाए और पर्याप्त प्रोत्साहन मिले तो अतिरिक्त आय अर्जित करने के साथ-साथ वे अपनी स्थिति को बेहतर बना सकती हैं। इनके डेरों में गाय, भेड़-बकरियों, मुर्गी-पालन को देखा जा सकता है। इनके साथ इन्हें लगाव भी बहुत है। यह सब इनकी सामाजिक पूँजी का हिस्सा है। समुदाय के बुज़ुर्ग महिला और पुरुष ख़ाली समय में बढ़ई का काम करते हैं। कुछ सन (जूट) के थैले बँटते हैं। कुछ चटाई बुनते हैं। कुछ जंगली उत्पादों पर निर्भर धंधों से गुज़ारा करते हैं।

[vi] गुल्लो कबूतरी (35) का वक्तव्य. ग्राम, चुरारी, ज़िला महोबा, मार्च, 2018.

[vii] साक्षात्कार अध्यापक रमेश कुमार (35) से 28 अप्रैल, 2018 को, ग्राम बिल्खी, ज़िला महोबा.

बद्री नारायण के अनुसार उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों में रहने वाले बसोड़, कंजर, नट, कुचबंधिया, कबूतरा, बहेलिया, सपेरे आदि कई समुदाय ऐसे हैं जिनके पारम्परिक हुनर को नयी व्यवस्था में कोई जगह नहीं है। हुनरमंद होने के कारण वे मज़दूरी नहीं करना चाहते। आज वंचित वर्गों की एक बहुत बड़ी आबादी बाज़ार के दरवाज़े पर भ्रमित होकर खड़ी है। ऐसे समूहों को 'कम्युनिटीज़ इन कन्फ़्यूज़न' कहा जा सकता है।[viii] इनकी स्थिति काफ़ी दयनीय है। उन्हें रोज कुआँ खोदना है। रोज़ पानी पीना है। रोज़ कमाना और खाना है। रोज़ की कमाई कई दिन उतनी भी नहीं हो पाती कि दो जून रोटी मिल सके।

समुदाय का मूक हो जाना

आवाज़ एक मानवीय उपहार है। आवाज़ें दृश्यता प्रदान करती हैं। आवाज़ ऐसी होनी चाहिए जो कुछ मायने रखती हो, और जिसे अनसुना नहीं किया जा सकता हो। शब्द मूक का आशय है— बोलने में असमर्थ, बोलने की शक्ति की कमी, आवाज़ के होते हुए भी चुप बने रहना।[37] कोई भी आवाज़ केवल बोलना ही नहीं है, बल्कि यह किसी वक्ता को पहचान दिलाती है। यह बोलने वाली / वाला जिस समुदाय से ताल्लुक़ रखता है, को हस्तक्षेप करने में सक्षम बनाती है। जिससे उसे न दिखाई पड़ने वाली स्थितियों से आज़ादी मिलती है।[38] बहुआयामी दबावों के कारण आवाज़ के होते हुए भी जो बोलता नहीं है / चुप बना रहता है / जिसमें बोलने की शक्ति का अभाव है— वो मूक है, बेआवाज़ है।

किसी समुदाय की आवाज़ तभी आवाज़ मानी जाती है जब उसे जनतंत्र द्वारा सुना जा सके। समुदाय सुने जाने की क्षमता तभी अर्जित कर सकता है, जब अपने अंदर आकांक्षा / हसरत पालने की क्षमता का विकास कर सके।[39] आकांक्षा पालने की यह क्षमता माँग रखने की क्षमता का विकास करती है। जनतंत्र में लोगों को वही हासिल होता है, जिसकी वे माँग कर पाते हैं। उन्हें वह नहीं मिलता, जिसे वे नहीं माँगते।[40] ऐसी स्थिति में जनतंत्र में माँग की चेतना दृश्यमानता हासिल करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। समुदाय अपनी समस्याओं को किसी से बताने में तब तक मूक बना रहता है, जब तक कोई व्यक्ति इनसे संवेदनशील होकर बात न करे। इसलिए ऐसे समुदायों को मूक समुदाय कहा जा सकता है। 'म्यूट समूह सिद्धांत'[41] के माध्यम से एक समुदाय को मूक करने की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। समाज की अगुवाई कुछ प्रभुत्वशाली व्यक्ति करते हैं। इसमें कुछ समूह 'म्यूट' हैं और समाज की प्रभुत्वशाली संरचना में अपने आपको पूरी तरह से शामिल नहीं कर पाते। इसके पीछे पूर्वग्रह एक प्रमुख संरचनात्मक कारक है। म्यूटिंग प्रक्रिया के दो प्रमुख तत्त्व प्रभावशाली और अधीनस्थ समूह हैं, जो असमान संबंधों से आपस में जुड़े रहते हैं। विद्वानों ने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि नियंत्रण, उत्पीड़न, सामाजिक अनुष्ठान, परम्परा, प्रभुत्व, पूर्वाग्रह आदि ने कई तरह से कुछ समुदायों को मूक करने की भूमिका निभाई है। यह सब कुछ एक समुदाय की अधीनता और उसका मुँह बंद करने के लिए ज़िम्मेदार हैं। ऐसे समुदायों में छोटे दलित, वनवासी, विमुक्त, घुमंतू, अर्ध-घुमंतू व वंचित समुदाय शामिल हैं। इसी तरह की परिस्थितियाँ कबूतरा समुदाय की भी हैं। इसलिए कबूतरा समुदाय को मूक समुदाय कहा जा सकता है।

[viii] बद्री नारायण (2017).
[37] मैरियम वेबस्टर डिक्शनरी (1831).
[38] निक काउल्ड्रे (2010) : 03.
[39] अर्जुन अप्पादुरै (2004) : 64.
[40] आलोका पाराशर-सेन (1990) : 156.
[41] एडविन आर्डेनर (2007) : 15.

उपसंहार

निष्कर्ष बतौर कहा जा सकता है कि घुमंतुओं को अपने एकीकृत विकास के लिए समुचित ढाँचागत सुविधाओं, नागरिक सुविधाओं और अन्य अवसरों का लाभ नहीं मिला है। वे शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से अलाभ की स्थिति में हैं। वे उच्च वर्ग और ऊँची जातियों द्वारा शारीरिक और भावनात्मक रूप से उत्पीड़ित भी किये जाते हैं। समुदाय के लिए व्यवस्था द्वारा निर्मित पिछड़ेपन और ग़रीबी के दुष्चक्र से बाहर निकल पाना आसान नहीं है। अपने आत्म के परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त करने में समुदाय को लम्बा रास्ता तय करना होगा। उनमें से एक बहुत ही छोटे हिस्से को शिक्षा, रोज़गार, नेतृत्व और अन्य अवसर प्राप्त हुए हैं।

हमारा यह लोकतंत्र मात्र उन लोगों के लिए नहीं है जो सुविधाभोगी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और जिनकी संख्या अधिक है। उन लोगों का भी है जो कठिन परिस्थितियों में जीवन बिता रहे हैं, लेकिन जिनकी संख्या और दावेदारी कमज़ोर है। देश, राज्य और क्षेत्र में 'विकास हो रहा है', 'सबका साथ सबका विकास' जैसे नारों की गूँज तो उन तक पहुँचती है, लेकिन वास्तविक रूप में विकास इनसे कोसों दूर है। भारतीय इतिहासकार कानितकर ने नोट किया है कि बंजारे खाद्यपूर्तिकर्ता के रूप में सभी के लिए कार्य किया करते थे। उन्हीं की वजह से भारत का व्यापार, आंतरिक और बाह्य दोनों तरफ़ फलती-फूलती हालत में था। समाज में उनकी स्थिति सम्माननीय थी। आज घुमंतू समुदायों की महत्ता काफ़ी कम हो चुकी है।

वे आंध्र प्रदेश, हरियाणा, कर्णाटक, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में फैले हुए हैं। समय के साथ-साथ विकास की भी परिभाषाएँ बदली हैं। आज विकास के नाम पर बहुत सारे समुदाय विनाश का दंश सह रहे हैं। घुमंतू समुदाय अपनी पहचान, संस्कृति, भाषा के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्षरत हैं। आज ये कचरा बीनने वाले, गली के कालाबाज़, भटकते याजक, हॉकर्स आदि के रूप में काम करते हैं। उनके पास किसी तरह की भूमि नहीं है, घर नहीं है, न कोई सम्पत्ति है। मलिन बस्तियाँ, खुले और जीर्ण क्षेत्र इनके नियमित निवास स्थान हैं। सदियों से वे कलंक, सामाजिक उपेक्षा और शोषण का शिकार रहे हैं। आज़ादी के इतने दशकों के बाद भी उन्हें जीवन की बुनियादी सुविधाएँ अभी भी नहीं मिली हैं। दूसरी तरफ़ प्रगतिशील क़ानूनों, सोशल नेटवर्किंग और उनके विभिन्न हितधारकों के हस्तक्षेप के कारण इक्कीसवीं सदी में घुमंतू जीवन-शैली एक हद तक पूरी बदल-सी गयी है। नयी सहस्राब्दी में सहभागी संचार और विकास के दृष्टिकोणों के माध्यम से उन्हें शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त किया जाना चाहिए। आज घुमंतू समुदाय भारतीय समाज के सबसे अधीनस्थ वर्गों में से एक है जिन्हें ऐतिहासिक अव्यवस्था, अपरम्परागत व्यवसाय, औपनिवेशिक विरासत और सामाजिक कलंक का शिकार बनाया गया है। विकास की आधुनिक प्रक्रिया भी अपनी कक्षा में इन्हें शामिल करने में विफल रही है। घुमंतू समुदाय अपनी औपनिवेशिक कलंकित छवि के कारण नये अवसरों से वंचित हैं। इनका परम्परागत ज्ञान और कौशल आज के बाज़ारवादी युग में पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चुका है।

इसी संदर्भ में डी.आर. नागराज टेक्नोसाइड की बात करते हुए दलित-बहुजन बुद्धिजीवियों पर सवालिया निशान लगाते हैं। नागराज का कहना था कि पूँजीवाद की आर्थिक और राजनीतिक संरचना की— व्याख्या तो पश्चिम के समाज-विज्ञान ने की, पर उसके जातीय और सांस्कृतिक आधार की विवेचना करना तीसरी दुनिया के दलित-बहुजन बुद्धिजीवियों का कर्तव्य है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के ज़रिये हुए कारीगर जातियों और समुदायों के संहार को समझे बिना यह व्याख्या अधूरी ही रहेगी।[42]

---

[42] अभय कुमार दुबे (2002) : 15.

आधुनिक प्रौद्योगिकी और कलंक के चलते विमुक्त और कारीगर जातियाँ हाशिये पर शक्तिहीन समुदाय बन कर पड़े हुए हैं। दुर्भाग्य से, लोकतांत्रिक व्यवस्था और नागरिक समाज ने भी इनके मामले पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है।

महोबा ज़िले के कुलपहाड़ गाँव में एक ग़ैर-सरकारी संगठन अरुणोदय संस्थान ने कबूतरा समुदाय की मदद के लिए कुछ पहल की थी। नतीजतन ज़िला प्रशासन ने कुछ परिवारों को ज़मीन के छोटे भूखण्डों को आबंटित किया था जो मुख्य शहर / गाँव से काफ़ी दूर थे। आवागमन की कोई सुविधा नहीं थी। सरकार के ये प्रयास समुद्र में एक बूँद से ज़्यादा कुछ नहीं है।

चुनौती यह है कि हम उन्हें ठीक से सुन सकें। ठीक से सुन सकेंगे, तो ठीक से समझ सकेंगे। ठीक से समझ सकेंगे, तो जैसा वे चाह रहे हैं, वैसा हम कर सकेंगे। हमें यह मानना होगा कि हमारी भाषा, हमारे बोलने के तरीक़े, विकास की हमारी अवधारणा और उनकी भाषा, उनके बोलने के ढंग, जीवन जीने की ज़रूरतों में एक बड़ा अंतर है। इस अंतर को हमें पाटना ही होगा। अगर ऐसे समुदायों का विकास अभी तक नहीं हो पाया है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि ये अपना विकास नहीं चाहते हैं, या ये विकास के विरोधी हैं। आज ज़रूरत है, इनकी आवाज़ को, इनकी ज़रूरतों को, इनके मन को समझने की। समझ कर उनकी ज़रूरतों के हिसाब से उनके क्षेत्र में जाने और बात करने की। तभी भारतीय समाज के इन 'मूक समुदायों' की जनतांत्रिक आवाज़ भारतीय जनतंत्र में मुखरित हो सकेगी। वे आपको और आपकी योजनाओं को बड़े सम्मान के साथ अंगीकार करेंगे। उनके विकास के लिए सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है। लोकतंत्र सही मायनों में तभी साबित होगा जब सभी समुदायों की संसाधनों पर हिस्सेदारी बराबर हो और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हो।

इस परिप्रेक्ष्य की तैयारी इस दिशा में एक क़दम है, जिसे अनुसंधान, कार्यवाही और विमर्श के साथ पालन करने की ज़रूरत है। हमें आशा है कि ऐसे लोग लोकतंत्र के साथ बहुत ही सकारात्मक तरीक़े से प्रगति करेंगे और लोकतंत्र इनके समावेशन के लिए आगे बढ़ेगा।

संदर्भ

अजय दाण्डेकर और चित्रांगदा चौधरी (2010), *पेसा, लेफ़्ट विंग एक्सट्रीमिज़म ऐंड गवर्नेंस : कंसर्स ऐंड चैलेंजेज़ इन इंडियाज़ ट्राइबल डिस्ट्रिक्ट्स,* आईआरएमए, आणंद.

अर्जुन अप्पादुरै (2004), 'द कपैसिटी टू एस्पायर : कल्चर ऐंड द टर्म्स ऑफ़ रिकगनिशन', जीएसडीआरसी, एप्लाइड नॉलेज सीरीज़, 2 फ़रवरी, 2018 को देखा गया.

अभय कुमार दुबे (2002), *आधुनिकता के आईने में दलित,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ (2007), बंजारा महापंचायत सम्मेलन, नयी दिल्ली. *बंजारा टाइम्स,* 13 जुलाई, 2017 को देखा.

आत्माराम राठौड़ और बलिराम पाटिल (2014), *गोर बंजारा इतिहास व लोकगीत,* रुचि प्रकाशन, नागपुर.

आर.एच. हनुमानैकर, एम.एस. नागराज, और के. के. मल्शेट (2011), 'वैल्यू ओरिएंटेशन ऐंड एक्टिविटीज़ परफॉर्म्ड बाई ट्राईबल लुम्बनी वुमेन ऑफ़ नॉर्थ कर्णाटक', *एग्रीकल्चर अपडेट,* खण्ड 6, अंक 1.

आलोका पाराशर-सेन (2004), *सबॉर्डिनेट ऐंड मार्जिनल ग्रुप्स इन अर्ली इंडिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

उमा चक्रवर्ती (2006), *एवरीडे लाइव्ज़, एवरीडे हिस्ट्रीज़ : बियॉन्ड द किंग्स ऐंड ब्राह्मंस ऑफ़ 'ऐनशेंट' इंडिया,* तूलिका बुक्स, नयी दिल्ली.

एडविन आर्डेनर (2007), द *वायस ऑफ़ प्रोफ़ेसी ऐंड अदर एसेज़,* बर्घह्न बुक्स, यूके.

ए.एल. बाशम (2004) *द वंडर दैट वाज़ इंडिया,* पिकाडोर, लंदन.

कमल नयन चौबे (2015), *जंगल की हक़दारी : राजनीति और संघर्ष,* सीएसडीएस-वाणी, नयी दिल्ली.

गणेश एन.देवी (सं.)(2002), *पेंटेड वर्ल्डर्स ऐंड एंथोलॅजी ऑफ़ ट्राइबल लिटरेचर,* पूर्वा प्रकाशन, बड़ोदरा.

.... (2006), *अ नोमैड्स कॉल्ड थीफ़ : रिफ़्लेक्शन ऑन आदिवासी साइलेंस,* ओरिएंट लॉन्गमैन, नयी दिल्ली.

.... (सं.)(2013), *नैरेटिंग नोमैडिज़म : टेल्स ऑफ़ रिकवरी ऐंड रेज़िस्टेंस,* (सं.), रौटलेज, नयी दिल्ली.
गोविंद राठौड़ (2014), *प्रोग्रेस ऑफ़ बंजारा इन 21 सेंचुरी ऑफ्टर इंडिपेंडेंस,* m.goarbanjara.com/progress-of-banjara-in-21st-century-after-inde .देखा गया 05 अगस्त, 2017.
चंद्रशेखर नाइक और डी. पारमेशा नाइक (2012), *बंजारा स्टैटिस्टिकल रिपोर्ट,* कर्णाटक स्टेट.
टाइम्स ऑफ़ इंडिया में प्रकाशित ख़बर, 'ब्रिटिश क्वाइंड क्रिमिनल ट्राइब्स टू डिस्क्राइब रूथलेस रॉबर्स', 30 मई, 2011. देखा गया.
ट्रैवेल (2009), *लम्बनी ट्राइब (वेस्टर्न इंडिया), वेबलॉग, ट्राइब्स ऑफ़ इंडिया, जनजाति* (पश्चिमी भारत), tribes-of-india.blogspot.com/2009/07/lambani-tribe-western-india.html , 18 सितम्बर, 2017 को देखा गया.
डी. सोयिनी मैडिसन (2005), *क्रिटिकल एथनोग्रैफ़ी : मेथड्स, इथिक्स ऐंड परफ़र्मेंस,* सेज़, लंदन.
तानाजी राठौड़ (2012), *बंजाराज़, द फॉरगॉटन चिल्ड्रेन ऑफ़ इंडिया : हिस्ट्री अनअर्थ्ड,* कर्णाटक टाण्डा डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड, बंगलुरू.
दिलीप डिसूज़ा (2001), *ब्रांडेड बाई लॉ— लुकिंग एट इंडियाज़ डीनोटीफ़ाइड ट्राइब्स,* पेंगुइन, नयी दिल्ली.
नागवेनी टी. (2015), *अ हिस्टॉरिकल ट्रांज़िशन ऑफ़ बंजारा कम्युनिटी विद स्पेशल रिफ़रेंस टु साउथ इडिया, रिसर्च जनरल ऑफ़ रिसेंट साईंसेज़,* खण्ड 4 ,अंक 2, मैसूर.
निक काउल्ड्रे (2010), *वाय वॉयस मैटर्स : कल्चर ऐंड पॉलिटिक्स आफ़्टर नियोलिबरलिज़म,* सेज़, लंदन.
निकोलस. बी. डर्क (2002), *कास्ट्स ऑफ़ माइंड-कोलोनिअलिज़म ऐंड द मेकिंग ऑफ़ मॉडर्न इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.
बद्री नारायण (2013), 'लोकतंत्र का भिक्षुगीत : अतिउपेक्षित दलितों के अध्ययन की एक प्रस्तावना', *प्रतिमान समय समाज संस्कृति,* वर्ष 1, खण्ड 1, अंक 1, (जनवरी–जून).
-------- (2016), *फ्रैक्चर्ड टेल्स : इनविज़िबल इन इंडियन डेमोक्रैसी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.
-------- (2017), 'कौन सुनता है : उनकी बात' हिंदुस्तान समाचार पत्र, इलाहाबाद, 9 अक्टूबर.
-------- (2017), 'पुराने कौशल नये असमंजस' हिंदुस्तान समाचार पत्र, इलाहाबाद, 23 अक्टूबर.
बरार सेंसस रिपोर्ट (1881), ज्ञान पब्लिशिंग हॉउस, नयी दिल्ली.
बी.जी. हालबर (1986), *लमनी इकॉनॉमी ऐंड सोसाइटी इन चेंज : सोशियो-कल्चरल आस्पेक्ट्स ऑफ़ इकॉनॉमिक चेंज़ अमंग द लमनी ऑफ़ नॉर्थ कर्णाटक,* मित्तल पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
भांग्या भुक्या (2010), *सबजुगेटिड नोमड्स, द लम्बाडाज़ अंडर द रुल ऑफ़ निजाम्स,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली.
मीना राधाकृष्णन (2000), 'कोलोनियल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ क्रिमिनल ट्राइब्स : येरुकुलस ऑफ़ मद्रास प्रेसीडेंसी', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 35, अंक 28-29.
मैत्रेयी पुष्पा (2000), *अल्मा कबूतरी,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
मैत्रेयी पुष्पा (2013), *झूला नट,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
मोतीराज राठौड़ (2014), *एशिएंट हिस्ट्री ऑफ़ गोर बंजाराज़, बंजारा न्यूज,* 26 अगस्त, m.goarbanjara.com/ancient-history-of-gor-banjaras-part-1 5 अगस्त, 2017 को देखा गया.
रमणिका गुप्ता (2015), *विमुक्त-घुमंतू जातियों का मुक्ति संघर्ष,* कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली.
रमाशंकर सिंह (2015), 'बंसोड़, बांस और लोकतंत्र', *प्रतिमान समय समाज संस्कृति,* वर्ष 3, खण्ड 3, अंक 1, (जनवरी-जून).
रांगेय राघव (2013), *कब तक पुकारूँ,* राजपाल ऐंड संस, नयी दिल्ली.
रॉबर्ट वेन रसेल और हीरालाल (1975), *ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑफ़ द सेण्ट्रल प्रोविंसेज़ ऑफ़ इंडिया,* खण्ड 2, कॉस्मो प्रकाशन, नयी दिल्ली.
रॉबर्ट गैब्रियल वराडी (1979), *नॉर्थ इंडियन बंजाराज़ : देयर इवोलुशन एज़ ट्रांसपोर्टर्स, साउथ एशिया जर्नल ऑफ़ साउथ एशियन स्टडीज़,* खण्ड 2, अंक 1.
रामशरण शर्मा (1992), *प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवम् संस्थाएँ,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
-------- (2009), *शूद्रों का प्राचीन इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
ललिता प्रसाद विद्यार्थी (1978), *राइज़ ऑफ़ एंथ्रोपोलॉजी इन इंडिया : अ सोशल साइंस ओरिएंटेशन,* खण्ड 1, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नयी दिल्ली.
लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडिया, खण्ड 1, अंक 1.

विलियम इर्विन (1903), *द आर्मी ऑफ़ द इंडियन मोग़ल्स : इट्स आर्गनाइजेशन ऐंड एडमिनिस्ट्रेशन,* लुजाक कम्पनी 46 ग्रेट रसेल स्ट्रीट, लंदन.

विनोद पवार (2007), 'पॉपुलेशन ऑफ़ गोआर्स (बंजारा) इन इंडिया', *बंजारा टाइम्स,* 5 अगस्त, 2017 को देखा गया.

विष्णु प्रताप सिंह (2002), *बंजारा आर ऐनशेंट ट्राइब्स नॉट राजपूत्स प्रेसिडेंशियल रिमॉर्क,* अखिल भारतीय बंजारा सेवा संघ, नयी दिल्ली.

श्रीराम शर्मा (2015), *बंजारा समाज : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन,* शर्मा परिवार चेरिटेबल ट्रस्ट, हैदराबाद.

संजय निगम (1990) 'डिसिप्लिनिंग ऐंड पोलिसिंग द 'क्रिमिनल बाई बर्थ', द *इंडियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू,* अंक 27, संख्या 2.

सुज़ैन अब्राहम (1999), 'स्टील ऑर आई शैल कॉल यू ए थीफ़, क्रिमिनल ट्राइब्स ऑफ़ इंडिया', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 34, अंक 27.

सुमित सरकार (2014), *मॉडर्न टाइम्स : 1880–1950,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

सुमित सरकार और तनिका सरकार (2014), *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया,* दूसरा खण्ड, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

सेंसस रिपोर्ट ऑफ़ सेंट्रल प्रोविंसेज़ (1881), ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

सेंसस ऑफ़ इंडिया (1931), ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.

सेंसस ऑफ़ इंडिया (1961), *मदर टंग,* भाग 1.

सैयद सिरानुल हसन (1920), द *कास्ट्स, ट्राइब्स ऑफ़ एच.इ.एस.निजाम्स डोमिनियंस,* खण्ड 8, द टाइम्स प्रेस, बॉम्बे.

हरिश्चंद्र वर्मा (1993), *मध्यकालीन भारत, भाग 2,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

हेनरी मायर्स इलियट (1869), द *रेसेस ऑफ़ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज़ ऑफ़ इंडिया,* खण्ड 1, ट्रुब्नर ऐंड कंपनी, लंदन.

हेनरी श्वार्ज़ (2010), *कान्स्ट्रक्टिंग द क्रिमिनल ट्राइब्स इन कोलोनियल इंडिया : एक्टिंग लाइक ए थीफ़,* विली ब्लैकवेल, यूके.

मौखिक स्रोत

साक्षात्कार : संध्या (32), ग्राम चुरारी, ज़िला महोबा, मार्च, 2018.

साक्षात्कार : संगीता (45), ग्राम चुरारी, ज़िला महोबा, मार्च, 2018.

साक्षात्कार : पूजा (26), ग्राम चुरारी, ज़िला महोबा, मार्च, 2018.

साक्षात्कार : मंगल (38), ग्राम कुल पहाड़ ग्रामीण, ज़िला महोबा, मई 2018.

साक्षात्कार : भारत (40), ग्राम कुल पहाड़ ग्रामीण, ज़िला महोबा, मई 2018.

साक्षात्कार : सज्जन बाबा (65), ग्राम गुमान सिंह का ख़ुदा, कुलपहाड़ ग्रामीण, ज़िला महोबा, मई, 2018.

साक्षात्कार : भारत (40), ग्राम बिल्खी, ज़िला महोबा, मई ,2018.

साक्षात्कार : अध्यापक रमेश कुमार (35), ग्राम बिल्खी, ज़िला महोबा, अप्रैल, 2018.